ऋषि दयानन्द की वेदार्थ प्रणाली

ऋषि दयानन्द अपने समय में अपने ढंग के अकेले थे। अकेले बिल्कुल अकेले, सौ में अकेले, हजार में अकेले, लाख में अकेले, करोड़ में अकेले, दुनिया के दो अरब मनुष्यों में अकेले। बस साथी था तो वह भगवान् था जिसने उन्हें सारे विश्व से निराले होकर वेद के सच्चे अर्थ समझाने की सामर्थ्य दी।

उन्हें किस-किसका सामना करना पड़ा ?

भारत में अन्ध-विश्वास तो थे ही, किन्तु वेद के अर्थ को विपरीत करने में उनके सामने जो सबसे बड़ा अंध-विश्वास खड़ा था, वह विकासवाद का अंधविश्वास था। इस घोर अंधविश्वास को पश्चिमी विज्ञान तथा पश्चिम की कुटिल राजनीति दोनों का समर्थन प्राप्त था। पश्चिमी विकासवादी कहते थे, 'प्राचीन आर्या मूर्खा: प्राचीनत्वात् अस्मदीय प्राचीन पुरुषवत्।' इस हेत्वाभास भरे अनुमान को देखकर हंसी भी आती थी और रोना भी। हंसी इसलिए आती थी मानो कोई किसी सती को कह रहा हो 'सति पत्यौ त्वं विधवा स्त्रीत्वात् प्रतिवेशिनीवत्।'

वेद में कितनी ही बुद्धिमत्तापूर्ण बात लिखी हो किन्तु उसका अर्थ उलटा ही होना चाहिये, नहीं तो समझ लो कि वेद का पाठ विकृत हो गया है। वेद में बुद्धि पूर्वक बात हो ही नहीं सकती, क्योंकि मानव के वैदिक पूर्वज हमारी अपेक्षा वन्दर के अधिक समीप थे। यदि आप इस विकासवाद के अंधविश्वास का खेल देखना चाहें तो अथर्ववेद के इस मंत्र का सायण तथा ग्रिफ़िथ का अनुवाद देख लीजिये।

मुग्धा देवा उत शुनायजन्त उत गोरंगैः पुरुधा यजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥

अथर्व कां ७ सू० ५ मंत्र ५

इसका सायणकृत भाष्य इस प्रकार है—

ते देवा यजमानाः मुग्धाः कार्याकार्यविवेकरहिता इत्यर्थः॥

कुत्ते से ! इस विषय का कोई उपाख्यान जो इस विचित्र यज्ञ का वर्णन करता हो, उपलब्ध नहीं है। मुग्धाः यह असम्भव प्रतीत होता है कि मुग्धाः (बौखलाये हुए मोह वशीभूत) यह पाठ यहां ठीक हो। यहाँ तो तृतीयाविभक्ति के किसी नाम की आवश्यकता थी, क्योंकि प्रकरण ऐसा ही है। विक्टर हेनरी महाशय ने मूर्ध्ना यह पाठ कल्पित कर लिया है। जिसका अर्थ है सिर से, जिससे तात्पर्य दधीचि की ग्रीवा पर लगे हुए घोड़े के सिर से है जोकि बर्गेन महाशय के मतानुसार अग्नि वा सोम का प्रतीक है।

ग्रिफ़िथ का अनुवाद देखिये—

With dog the gods, perplexed, have paid oblation, and with cow's limbs in sundry sacrifices.

Invoke for us, in many a place declare him who with his mind hath noticed this our worship.

देवों ने परेशान होकर कुत्ते की भेंट अर्पित की और गऊ के अंगों के साथ छोटी भेंटें दी। अनेक स्थानों पर उसको हमारे लिये जगाओ जिसने हमारी इस भेंट पूजा को देखा है।

अनुवाद तो सायण का है परन्तु इस पर ग्रिफ़िथ की टिप्पणी देखने योग्य है—

With dog: no legend referring to this extraordinary sacrifice has survived. Perplexed: it seems impossible that mugdhas (perplexed, infatuated) can be the right reading here. A substantive in the instrumental case is required by the context. M. Victor Henry reads murdhna, with the head, that is, with the horse's head given to Dadhyach, which, according to M. Bergaine (Religion, Vedic, 11 page 458) symbolizes Agni or soma.

इस प्रकार कुत्ते की यज्ञ भेंट करने वाली कोई दन्तकथा हमें उपलब्ध नहीं होती। इस मन्त्र में 'मुग्धा' का पाठ असम्भव प्रतीत होता है। प्रकरणानुसार यहाँ तृतीया विभक्ति होनी उचित प्रतीत होती है, इसलिये यहाँ मुग्धा: के स्थान पर 'मूर्न्धा' घोड़े का सिर दधीचि को भेंट में दिया जाना सम्भव हो सकता है। श्री मौशियर बर्गेन (Religion Vedic 11 Page 458) पृ० ४५८ जो कि अग्नि और सोम हो सकता है।

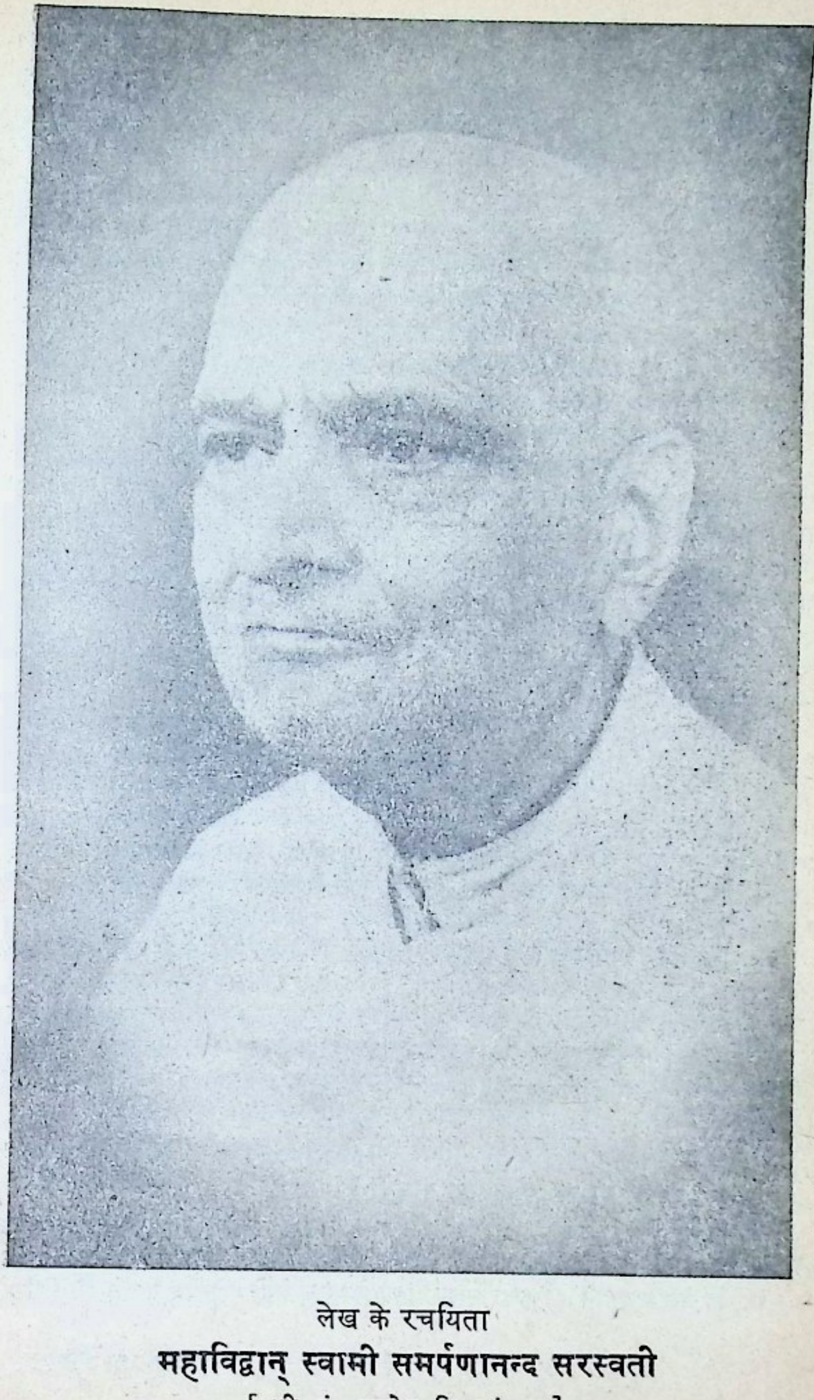
यह देखिये विकासवाद की करामात। क्योंकि ग्रिफ़िथ साहब की विचार-धारा से मंत्र मेल नहीं खाता इसलिये मंत्र ही बदल डालना चाहिये।

सुनते हैं कि गवर्गण्ड के राज्य में एक मनुष्य को फांसी हुई। फांसी का फंदा उसके गले में पूरा नहीं आया। हुक्म हुआ कि जिसके गले में पूरा उतरे उसी को फांसी टांग दो, यही हाल यहाँ है। हमारे विकासवाद का फन्दा इस मंत्र के गले में पूरा नहीं उतरा, तो बस नया मन्त्र बनाकर उसी को अथर्ववेद का मन्त्र समझ लो। यह है विकासवाद का अंधविश्वास।

इस वाद का आज के युग में इतना आतङ्क है कि इसके विरुद्ध कुछ बोलना उपहास को निमन्त्रण देना है, परन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें जान क्या है?

विकासवाद का मूलाधार है प्राणयात्रा जन्य परिवर्तन, प्राण की रक्षा के लिये जिसे नंगे पांव चलना पड़े उसके पैर का चमड़ा धीरे-धीरे मोटा तथा शीतोष्णादि द्वन्द्व सहन समर्थ हो जाता है। जिसे नंगे पैर न चलना पड़े उसका चमड़ा नरम पड़ता जाता है। परन्तु यह नियम एक सीमा तक ही चलता है।

सींग, पूंछ, पंख आदि जो अंग मनुष्य के पास नहीं हैं, उन सबकी उसे आवश्यकता है। यदि न होती तो नाना प्रकार के शस्त्र, नाना प्रकार के नौका विमानादि तथा चामर और बिजली के पंखे आदि वह क्यों बनाता है। परन्तु आज तक उसके यह अंग क्यों प्रकट नहीं हुए। जो जातियां सहस्रों वर्षों से नदी के किनारे रहती हैं और केवल मछली मारकर जीवन निर्वाह करती हैं, उनका सद्यो जात शिशु तैरना क्यों नहीं जानता? क्या करोड़ों वैज्ञानिक अंधविश्वास वश हम पर रौब डालने के लिये हाथ उठाकर चिघाड़-चिघाड़ कर कहेंगे कि उन्हें तैरने की आवश्यकता नहीं रही इसलिये वे तैरना भूल गये। तो भी इस बात पर अंध श्रद्धा के सिवाय किसी दूसरे



लेख के रचयिता
महाविद्वान् स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती
[श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार]

आधार पर विश्वास किया जा सकता है ? कदापि नहीं।

दूसरी ओर जो भैंस सहस्रों वर्ष से राजपूताने में रहती है, जिसे कभी डूबने योग्य पानी में तैरने का अवसर वर्षों में एक आध बार आता होगा, उसका सद्यो जात शिशु पानी में घुसते ही क्यों तैरने लगता है ?

मानव जगत् तथा मानवेतर जगत् का यह पर्वताकार भेद आँखों से कैसे परे किया जा सकता है ? इसे आंखों से परे करने का एक ही उपाय है। विकासवादियों के भय के मारे आँखें बन्द करले। बस फिर तो अन्धकार के सिवाय कुछ नहीं। परन्तु जब तक मस्तिष्क में तर्क की एक चिनगारी भी शेष है कोई आँखें कैसे मूंद ले।

अब लीजिये कछुए को। यह विचित्र जन्तु है। इसे जरा उलट दीजिये, बस फिर एक पग भी नहीं चल सकता। इसलिये यदि कोई मोटर कार उलट जाये तो अंग्रेजी में कहा जाता है:—The car has turned turtle. परन्तु इससे भी विचित्र बात यह है कि इस जन्तु की पीठ पत्थर से भी अधिक कठोर है। दूसरी ओर इसका पेट अति सुकुमार है। हम पूछना चाहते हैं कि इस जानवर की पीठ कब और कहाँ रगड़े खा-खा कर कितने करोड़ वर्ष में इतनी कठोर हो गई ? तब क्या यह पीठ के बल चलता था, और फिर इसका पेट बराबर नरम है यह कितने करोड़ वर्ष में कठोर होगा और अब यह पीठ के बल चलना एकदम क्यों भूल गया ? वह करोड़ों वर्षों की आदत एकदम कहाँ रफूचक्कर हो गई ? इसके पेट की सुकुमारता को देख कर तो कहा जा सकता है कि इसे पैरों के बल चलते मुश्किल से कुछ हजार वर्ष हुए होंगे, वह करोड़ों वर्षों की पीठ के बल चलने की आदत कुछ हजार वर्ष में कहाँ भाग गई और इसके पैर तो अभी तक पत्थर के समान कठोर नहीं हुए।

अब एक और जीव श्रेणी लीजिये। इन में से मैं मोर और कोयल को लेता हूं। प्राण रक्षा के निमित्त परिश्रम करने से मोर के पञ्जे तीक्ष्ण हो गये हों। डैने बलवान् हो गये हों। चोंच कठोर हो गई हो। यह सब कुछ तो समझ में आता है, परन्तु यह सुन्दर पूंछ के चन्दे कहाँ से आ गये। मोर के कण्ठ तथा पूंछ की सुन्दरता तथा कोयल के कण्ठ की काकली का जन्म कैसे हुआ ? इस लम्बी सुन्दर पूंछ का सौन्दर्य कहाँ से आया और नृत्य कला मोर ने कहाँ से सीखी ? उत्तर मिलता है कि सौन्दर्य पर ही मोहित हो कर मोरनी मोर की ओर आकृष्ट होती है इसलिये यह उसकी प्राण रक्षा के लिए आवश्यक है। वाहजी वाह यह भी एक रही। पहले सुन्दर पूंछ बनी तब मोरनी आकृष्ट हुई, परन्तु प्रश्न तो यह है कि सुन्दर पूंछ बनी कैसे ? चेतना-हीन प्रकृति में इस सुन्दर कला कृति का विकास कैसे हुआ ? उत्तर एक ही हो सकता है तर्क की आंख मूंद लो और विकासवादी महामहोपाध्याय जी के आगे हाथ जोड़कर कह दो सत्य वचन महाराज, नहीं तो आर्यसमाजी कह कर तुम पर धरती से मिटा दिये जाने का फतवा लगा दिया जायेगा। परन्तु हम तो टलने वाले नहीं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानव तथा मानवेतर जगत् में एक स्पष्ट भेद है।

मानव बिना सिखाए कुछ नहीं सीखता।

मानवेतर को जन्म से बहुत सी सिद्धियां प्राप्त हैं, जिन्हें सीखने में मानव को सैंकड़ों वर्ष लग जाते हैं। कबूतर को उड़ने की सिद्धि, भैंस को तैरने की सिद्धि, रेशम के कीड़े को रेशम बनाने की तथा मधुमक्षिका को मधु तथा मधुकोष बनाने की सिद्धि,

ये सिद्धियाँ इन जीवों को जन्म से प्राप्त हैं इसीलिए यह पशु अर्थात् द्रष्टा कहलाते हैं।

दूसरी ओर मनुष्य मनु अर्थात् मननशील कहलाता है। मनुष्य में जो अपत्य प्रत्यय है, यह आलङ्कारिक है अर्थात् मनन की सन्तान अन्यथा मनुष्य तथा मनु पर्यायवाची हैं जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण के इस प्रमाण से सिद्ध है।

होता मनुवृतोऽयं हि सर्वतो मनुष्यैर्वृतः

ऐतरेय १० अध्याय २ खण्ड।

हमने देख लिया कि यह विकासवाद एक थोथी, सारहीन, निराधार, तर्क-विरुद्ध जर्जर कल्पना मात्र है। किन्तु यही आज एक दीवार बनकर हमारे और सच्चे वेदार्थ के बीच खड़ी है। इस दीवार को तोड़ दो।

अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद

वेद का सच्चा अर्थ जानने में बाधक दूसरा वाद नवीन मीमांसकों का अदृष्ट-वाद अथवा अपूर्ववाद है। वेदवाणी की महिमा गान करते हुए पतञ्जलि महाराज ने कहा है—

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति ।

अर्थात्—वेदवाणी का एक शब्द भी ठीक जानकर और उसे भली प्रकार प्रयोग में ले आवें तो वह कामधेनु है। इन मीमांसकों ने इसमें से सुप्रयुक्तः यह कड़ी उड़ा दी है। सम्यग् ज्ञातः का अर्थ ये करते हैं सम्यगुच्चारितः, इसीलिए इन्होंने यज्ञों का खूब विध्वंस किया और उसके साथ ही वेद का भी खूब विध्वंस किया। यज्ञ प्रक्रिया का मूलतत्त्व जानने के लिये हमें दो शब्दों को समझना होगा।

तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम् (शत. ११. २. ४. १)

अहुयतैव सत्यं श्रद्धायाम्।

अब इन मीमांसकों के कहे अनुसार उदात्तानुदात्त स्वरित का ठीक विचार करके सम्यक् मंत्रोच्चारण पूर्वक घृत अग्नि में डाल दिया तो बस यज्ञ का पूरा-पूरा फल मिल जाएगा, क्योंकि इस कर्म से एक में एक अदृष्ट अथवा अपूर्व पैदा होता है, फिर उस क्रिया कलाप का प्रत्यक्ष फल उस यज्ञ से चाहे बिल्कुल विपरीत क्यों न हो, किन्तु अदृष्ट का जादू सब विघ्नों को पार करके मनुष्य को इष्टसिद्धि तक पहुंचा देता है। यह अदृष्टवाद ही समस्त अंध विश्वासों का प्राण है। भारत का सारा अधःपतन इसकी कृपा से हुआ।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि प्रतीक है। श्रद्धा उसका प्रत्यायनीय है, प्रतीक प्रत्यक्ष है, प्रत्यायनीय अदृष्ट है, अर्थात् अग्निहोत्र में जब अग्नि जला कर उसमें घृत की आहुति करते हैं तो इस स्थूल क्रिया के पीछे श्रद्धा में सत्य की आहुति यह सूक्ष्म भावना छिपी है यह अदृष्ट है इसको जान कर जीवन में आचरण करने से मनुष्य का कल्याण होता है। किन्तु इसके विपरीत यह मध्यकालीन मांसलप्रज्ञ मीमांसक लोग विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण द्वारा अग्नि में घृत डालते ही यज्ञ पूरा हो गया और उसी समय यजमान के परलोक बैङ्क में अदृष्ट का चैक जमा हो गया। यहाँ सम्यग् ज्ञातः के पश्चात् सुप्रयुक्तः का कुछ काम नहीं। बस सम्यगुच्चारितः से काम पूरा हो गया। मीमांसकों के अदृष्ट का प्रतीक मात्र से सम्बन्ध है। प्रत्यायनीय से कुछ नहीं, इसीलिए

शतपथ ब्राह्मणादि समस्त ग्रन्थों के भाष्य उपहसनीय दीखते हैं।

वर्तमान युग के एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

कम्यूनिस्ट झण्डे पर हंसिया और हथोड़े का चित्र बना है। यह हंसिया और हथौड़ा प्रतीक हैं। हंसिया का प्रत्यायनीय है किसान और हथौड़े का प्रत्यायनीय है मजदूर।

अब यदि कहा जाय कि हंसिया हथौड़े की रक्षा करो। हंसिया हथौड़े के अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है तो इसका अर्थ हुआ कि राष्ट्र के किसान मजदूरों की रक्षा करो, इनके अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है, तब तो बिल्कुल ठीक है। परन्तु इसको न समझ कर कोई मनुष्य हथौड़े को नमस्कार करके फूल चढ़ाने लगे, तो उसे तो कुछ भी न मिलेगा और यदि हथोड़े को पैर से लात मारे तो थोड़ा सा पैर के तले में दर्द होकर रह जायगा, और तो इस अपमान का कुछ फल न होगा।

इस प्रकार हंसिया हथौड़े का अदृष्ट किसान और मजदूर हैं। परन्तु मीमांसकों के विचारानुसार हंसियायै स्वाहा कर घृत की आहुति अग्नि में डालते ही एक अदृष्ट पैदा हो जाता है, बस फिर कल्याण में क्या देर है।

इस अदृष्ट शब्द के ठीक न समझने से कितना भयङ्कर परिणाम हुआ यह कह कर नहीं बताना पड़ेगा। हम अपनी बात को पुष्ट करने के लिये यहां शतपथ ब्राह्मण का एक प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बिल्कुल पर्याप्त होगा।

तद्वै तज्जनको वैदेहः याज्ञवल्क्यम् पप्रच्छ वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्या ३ इति। वेद सम्राडिति। किमिति पय एवेति।२। यत् पयो न स्यात् केन जुहुआ इति। व्रीहियवाभ्यामिति यद् व्रीहियवौ न स्याताम् केन जुहुया इति या आरण्या ओषधय इति। यदारण्या औषधयो न स्युः केन जुहुया इति वानस्पत्येनेति यद्वानस्पत्यं न स्यात् केन जुहुआ इत्यद्भिरिति यदापो न स्युः केन जुहुया इति।३। स होवाच न वा इह तर्हि किंचनासीदथैतदहूयतैव सत्यं श्रद्धायामिति। वेत्थ याज्ञवल्क्याग्निहोत्रं धेनुश्शतन्ते ददामीति होवाच।४।

॥शत ११. २. २ से ४ तक।

सो यह इस प्रकार हुआ कि एक समय वैदेह जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा—हे याज्ञवल्क्य! अग्निहोत्र का तत्त्व जानते हो?

याज्ञ०—हां सम्राट् जानता हूँ।
जनक—किस पदार्थ से हवन करते हो?
याज्ञ०—दूध से।
जनक—यदि दूध न मिले तो काहे से हवन करोगे?
याज्ञ०—जौ चावल से।
जनक—यदि जौ चावल न मिले तो किससे हवन करोगे?
याज्ञ०—तो जो कोई जंगली अनाज मिलेगा उससे।
जनक—यदि जंगली अनाज न मिले तो किससे हवन करोगे?
याज्ञ०—तो जंगली फलों से।
जनक—यदि जंगली फल न मिलें तो किससे हवन करोगे?

याज्ञ०—जल से।

जनक—यदि जल न मिले तो किससे हवन करोगे ?

तो इस पर याज्ञवल्क्य बोले—जब केवल वेद ही था, और यह सब क्रिया-कलाप कुछ नहीं था, तब भी हवन होता ही था। वह हवन सत्य का श्रद्धा में होता था। इस पर जनक ने कहा कि हां याज्ञवल्क्य तुम यज्ञ को ठीक जानते हो, मैं तुम्हें सौ गाय देता हूँ।४।

इसीलिये इसी प्रकरण में प्रथम कांड में लिखा है कि—

वाग्ह वा एतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री। मन एव वत्सस्तदिदं मनश्च वाक्च समानमेव सन्तानेव तस्मात् समान्या रज्वा वत्सं च मातरं चाभिदधाति तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम् ।१।

इस अग्निहोत्र की दूध देने वाली गाय वाणी है, मन उसका बछड़ा है। सो यह मन और वाणी एक समान होते हुए भी पृथक् से हैं। इसलिये एक रस्सी से गाय और बछड़े को बांधता है। यहाँ श्रद्धा अग्नि है और सत्य घृत है। यहां स्पष्ट है कि गाय वाणी का प्रतीक है और बछड़ा मन का प्रतीक है। रस्सी दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध का प्रतीक है, अग्नि श्रद्धा का और घृत सत्य का प्रतीक है।

इस पर कहा जायगा कि तब तो यह अग्निहोत्रादि यज्ञ एक प्रकार के नाटक हुए, जिनमें शूर्प अग्निहोत्रहवणी पुरोडाशादि अभिनय करने आते हैं, तो उसका उत्तर हाँ में है।

भरतनाट्यशास्त्र में लिखा है यजुर्वेदादभिनयम्। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने अभिनय यजुर्वेद से लिया इसीलिये अब तक नाटक में अभिनय कर्ताओं को पात्र कहा जाता है। यज्ञों में जो काम पात्रों से लिया जाता था यह नाट्य में स्त्री पुरुषों से लिया गया किन्तु नाम वही पात्र रहा यही नहीं स्वयं शतपथ ब्राह्मण में अग्निहोत्र को काव्य कहा गया है। ऊपर जो काव्य उद्धृत किया गया है उसी प्रसंग में याज्ञवल्क्य अपने से प्राचीन किसी ऋषि के श्लोकों का उद्धरण देकर अथवा स्वयं निर्मित श्लोक उद्धृत करके कहते हैं।

तदप्येते श्लोकाः। किंस्विद् विद्वान् प्रवसत्यग्निहोत्री गृहेभ्यः कथमस्य काव्यम्। कथसंततोऽग्निरिति। कथंस्विदस्यानपप्रोषितं भवतीत्येवैतदाह ।५। यो जविष्ठो भुवनेषु स विद्वान् प्रवसन् विदे तथा तदस्य काव्यम् तथा सततोऽग्निरिति। मनएवैतदाह मनसैवानपप्रोषितं भवतीति ।६।

जब अग्निहोत्री विद्वान् प्रवास में ही घर से बाहर हो तब क्या होगा ? प्रवास में रहते हुए भी अग्निहोत्र की दृष्टि से अप्रवास हो वह कैसे होगा ? उसके काव्य का क्या बनेगा, अग्नि अविच्छिन्न कैसे रहेगा ? ।५। इस प्रश्न का उत्तर अगली कण्डिका में है, जो इस संसार में सबसे तीव्र गति वाला है। वह विद्वान् ज्ञान देने के लिये प्रवास में साथ है, उसी के द्वारा काव्य की रक्षा होगी, अग्नि अविच्छिन्न रहेगा। सो यह इशारा मन की ओर है, मन के द्वारा प्रवास, अप्रवास हो जायगा। क्योंकि श्रद्धारूप अग्नि मन में है और अग्निहोत्र रूप काव्य उसके मन में उसके साथ है।

इस प्रतीक प्रत्यायनीय के रहस्य को न समझकर मध्यकालीन मीमांसकों ने विचित्र धांधली मचाई है। कात्यायन श्रौत सूत्र में लिखा है—"अवकीर्णिनो गर्दभेज्या।"

अर्थात् जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग कर बैठे उसे गर्दभेज्या करनी चाहिये। अब स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग करने वाले का प्रायश्चित्त अभीष्ट है, इसलिये मूर्खता का प्रतीक गधा चुना गया। साथ ही यह भी बताया गया कि यदि तू गधे से कठिन परिश्रम करना तथा जो मिले खाकर प्रसन्न रहना यह सीखेगा तो फिर ब्रह्मचर्य भङ्ग न करेगा। यही प्रायश्चित्त का भाव है। प्रायश्चित का अर्थ है प्र=अग्रे, अयः= गमनम्, चित्तम्=दृढ़ निश्चयः अर्थात् अग्रे गमनाय दृढ़ निश्चयः इस प्रकार हुआ। तूने भूल की, गर्दभेज्या द्वारा तुझे दण्ड मिल गया, अब कमर कसके उठ और "आगे बढ़ने का दृढ़ निश्चय" कर। अब तक यह गर्दभेज्या भारत के ग्राम ग्राम में प्रचलित है। जब कोई ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अपराध करता है, तो उसे गधे पर चढ़ाया जाता है। इस यज्ञ का स्थान भी वही शास्त्रोक्त है अर्थात् चौराहा सो ब्रह्मचर्य का अपराधी गधे पर चढ़ कर चौराहे पर घूमे यह तो प्रायश्चित्त हुआ, किंतु यह भी तब होगा जब प्रायश्चित्ती इसके भाव को ठीक जान कर, उसे सुप्रयुक्त भी करेगा। केवल रीति निर्वाह मात्र से कुछ लाभ न होगा। यहां गधा तो मूर्खता, अध्यवसाय और स्वल्पाहार का प्रतीक मात्र है। गधे पर चढ़ना तो दृष्ट है, अदृष्ट भावना तो गधे से कुछ सीखना है और कुछ भूलना है। मूर्खता का परित्याग, अध्यवसाय और तप का ग्रहण, यह इस प्रतीक का प्रत्यायनीय है। परन्तु अब मध्यकालीन मीमांसकों की लीला देखिये।

जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य भंग करे वह गधे को काटकर चौराहे में हवन करे।

भला पूछिये तो सही कि यह प्रायश्चित्त क्या हुआ, एक पाप को दूर करने के लिये उससे भी बड़ा पाप कर डाला, ब्रह्मचारी ने तो व्रत भङ्ग किया और गधा बेचारा निरपराध मारा गया। परन्तु बोलिये मत अदृष्ट उत्पन्न हुआ अपूर्ण उत्पन्न हुआ। कहीं कोई मीमांसक आप पर भी प्रहार न कर बैठे।

जरा आगे और लीला देखिये। गधा मारा गया उसका बटवारा भी हो गया। एक भाग होता को, एक अध्वर्यु को, एक उद्गाता को एक यजमान को मिला। परन्तु सबसे बढ़िया भाग तो ब्रह्मा जी को मिलना चाहिये। सो देखिये चौराहे में से कुछ दबाए लिये चले आ रहे हैं। आप उत्सुकता से पूछेंगे वह क्या है? सो सुनिये। "शिश्नात् प्राशित्रा वदानम्," अर्थात् ब्रह्मा जी को गधे का ...... मिले। जब घर पहुंचेंगे तो ब्रह्मा जी की पत्नी और बच्चे यह प्रसाद पाकर कितने प्रसन्न होंगे, वाह वाह कैसे उछलेंगे। बोलो मत, अदृष्ट उत्पन्न हुआ है।

इस पर आप पूछेंगे कि तम ही कहो कि इस सूत्र का अर्थ क्या है? तो सो सुनिये। इस प्रकार उपस्थेन्द्रिय का दुरुपयोग करने वाले बालक को चतुर्वेदविद् ब्रह्मा, जो इस विज्ञान का विशेषज्ञ हो, उसकी शरण में ले जावें और उसकी देखरेख में रह कर इस इन्द्रिय का पूर्ण सुधार करें, जिससे फिर भूल न हो, तब प्रश्न होगा कि फिर वह ब्राह्मण खावें क्या? उत्तर यह है कि इस सुधार के विज्ञान से ही उनकी जीविका भी चलेगी, जिस प्रकार नेत्र विशेषज्ञ नेत्र की कमाई खाते हैं इसी प्रकार शिश्न विशेषज्ञ शिश्न सुधार की कमाई खावेंगे और यह श्रद्धा पूर्वक उन तक पहुंचाना यजमान का

कर्तव्य है इसलिए इसे यज्ञ का अंग बनाया । इस प्रकार हुआ "शिश्नात् प्राशित्रा वदानम्" सो इस प्रतीक प्रत्यायनीय के मर्म को न जान कर अदृष्टवादियों ने जो वेद का विध्वंस किया उससे ऋषि दयानन्द ने हमारा उद्धार किया.। धन्य हो दयानन्द !

विनियोगवाद

अब वेदार्थ ज्ञान का तीसरा महाविघ्न विनियोगवाद हमारे सामने आता है। विनियोग किसको कहते हैं ? अन्यत्रोपात्तानां वाक्यानाम् यथास्थानमुपयोगी विनियोगः जो वाक्य किसी एक ग्रन्थ के विशेष प्रकरण में पड़े हों उनको प्रसङ्गानुसार किसी वैसे ही प्रकरण में इस ढङ्ग से प्रयोग करना जिससे वे उस प्रसङ्ग में फब जावें, यही विनियोग कहलाता है । जैसे गीता का यह वाक्य 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।। अ० २ श्लोक २७ जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी, जो मरा है उसका जन्म अवश्य होगा । इसलिए अवश्यम्भावी बात पर तुम्हें शोक करना उचित नहीं ।

यदि किसी उपदेशक द्वारा किसी ऐसे अवसर पर पढ़ दिया जाये जहां किसी जवान पुत्र की देश सेवा के कार्य में मृत्यु हो गई तो वह इसका ठीक विनियोग होगा।

परन्तु किसी कन्या के विवाह पर कन्या की विदाई के समय यह वाक्य पढ़ा जावे, तो इसका अनुचित उपयोग होगा । यह विनियोग नहीं दुर्नियोग होगा। अब किसी वाक्य का विनियोग हुआ है अथवा दुर्नियोग इसका निर्णय करने का उपाय यह है कि पहले उस वाक्य का ठीक अर्थ जानकर पीछे विनियोग को देखना चाहिये कि विनियोज्य वाक्य का विनियोग ठीक अर्थ के अनुकूल है या नहीं। किन्तु इसके ठीक विपरीत मध्यकाल के मीमांसकों ने विनियोग वाक्यों का अर्थ निश्चय करके वेद को उसके पीछे चलाया, उदाहरण के लिये मैं यजुर्वेद ३७ अध्याय १२ मंत्र को लेता हूं।

मन्त्र इस प्रकार है।

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः ।
पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजाम्मे दाः ।।
सुषदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः ।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषम्मे दाः ।।
विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्ये ओजो मे दाः ।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ।।

पति पत्नी की प्रशंसा में पत्नी से कहता है, हे पत्नि, मेरा धर्म है कि मेरे रहते कोई तेरी ओर आंख न उठा सके और तुझे सदा उचित आदर से देखे। इस प्रकार अनाधृष्टा तू अग्नि के राज्य में मुझे आयु देने वाली हो, मेरी दक्षिण दिशा में अर्थात् वीर्य्य शक्ति सम्पन्न होने की दशा में तू पुत्रवती होकर इन्द्र के राज्य में मुझे प्रजा देने वाली हो, उचित रूप से घर की देख रेख के लिए घर में बैठने वाली सुषदा होकर तू मेरे घर रूपी सवितृ मण्डल में मुझे आंख देने वाली हो । चारों ओर का ठीक ठीक गृह वृत्तान्त मुझे सुनाने वाली हो अतएव आश्रुति बन कर तू उत्तर दिशा में अर्थात् मेरे वामाङ्ग में धाता के राज्य में मेरी गृहलक्ष्मी की पोषक बन, मेरे सिर पर

धारने योग्य विधृति अर्थात् छत्र रूप बन कर तू बृहस्पति के राज्य में अर्थात् मेरे मस्तिष्क में ओज भरने वाली बन। तू सब नाष्ट्रा अर्थात् व्यभिचारादि द्वारा हमारा जीवन नष्ट करने वाली दुराचारिणी स्त्रियों से मेरी रक्षा कर सो किस प्रकार ? कि—

मनोरश्वासि=अन्तःकरणस्य व्यापिका भवसि।

भावार्थ—तू मेरे मनमें इस प्रकार व्याप जाती है कि किसी दुराचारिणी के लिए उसमें स्थान ही नहीं रहता।

यह इस मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ है। कितना स्पष्ट, कितना प्रकरणानुकूल, कितना युक्ति सङ्गत। मन्त्र में पड़ा हुआ पुत्रवती शब्द पुकार-पुकार कर कह रहा है, कि इसमें पत्नी का वर्णन है। इसका विनियोग पृथिवी में हुआ है। सो इस में कुछ अयुक्त बात नहीं। विवाह संस्कार में पति पत्नी से कहता है "द्यौरहं पृथिवीस्त्वम्' हे पत्नी मैं द्यौ हूँ तू पृथिवी है। यहां पति को बताने वाला द्यौः शब्द स्त्रीलिंग है। इसका चमत्कार दिखाने का यहां प्रसङ्ग नहीं वह यथास्थान दिखाया जायगा। किन्तु यहां पृथिवी कह कर वेदवाणी ने स्पष्ट रूप से पत्नी का वर्णन किया है। अब यदि मूल के पुत्रवती शब्द के पीछे पृथ्वी को चलाकर इस मन्त्र का अर्थ समझा जाय तो वह कितना शिक्षाप्रद तथा उत्साह वर्धक गृहस्थाश्रम में हमारा दर्शन बनता है। वेद की महिमा इससे कितनी स्पष्ट दिखती है। परन्तु मध्यकालीन भाष्यकारों ने वेद के पीछे विनियोग को न चलाकर विनियोग के पीछे वेद को चलाया है।

उनका व्यवहार ठीक इसी प्रकार है जैसे कोई तैयार कपड़ों की दूकान पर जाकर एक पाजामा मांगे। जब वह पहिन कर देखे तो पता लगे कि पाजामे की टांगे छोटी हैं। तब बड़ी टांगों वाला पाजामा दिखाने के स्थान में दूकानदार ग्राहक से माँग करे कि कृपा कर के टांग कटा कर आ जाइए पाजामा आपको पूरा आ जायगा। विनियोग के पीछे मूल को चलाना, पजामे के पोछे टांग को कटाने के सदृश घोर अत्याचार तथा पराकाष्ठा की मूर्खता है। किन्तु इसी मूर्खता का साम्राज्य मध्यकालीन मीमांसकों के द्वारा किए गए भाष्यों में दीखता है। ऊपर वर्णित मन्त्र का महीधर भाष्य देखिए।

हे पृथिवी, जो तू पूर्व दिशा में राक्षसों से अनाधृष्टा है, अग्नि के आधिपत्य में मुझे (यजमान को) आयु दे। जो तू दक्षिण दिशा में इन्द्र के आधिपत्य में पुत्रवती है सो तू मुझे संतान दे, जो तू पश्चिम दिशा में सुषदा अर्थात् जिसमें सब भली प्रकार बैठें ऐसी है सो सविता देव के आधिपत्य में मुझे नेत्र दे। हे पृथिवी, जो तू उत्तर दिशा में ब्रह्मा के आधिपत्य में आश्रुति है अर्थात् ब्राह्मणों के वेद श्रवण से युक्त है, सो तू मुझे धन की पुष्टि दे। जो तू ऊपर की दिशा में बृहस्पति के आधिपत्य में विधृति है सो मुझे ओज दे। हे महावीर पात्र के दक्षिण ओर की भूमि तू सब नाशकारक पिशाचादि से हमारी रक्षा कर, हे महावीर के उत्तर भाग की भूमि तू राजा मनु की घोड़ी है।

इसी प्रकार पशुयाग में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनका ऊट पटांग अर्थ इसलिए किया गया कि इनका विनियोग पशु संज्ञपन में है। अब यदि मूल मन्त्र के पीछे विनियोग को चलाते तो इन भाष्यकारों को पशु शब्द का भी ठीक अर्थ ज्ञात हो जाता और संज्ञपन का भी, परन्तु इन विनियोग के दास मन्दमति लोगों ने पशु और संज्ञपन दोनों

शब्दों के साथ जो लीला की है उस पर रोयें अथवा हंसें यह कहना कठिन है। हंसी इसलिए आती है कि यह अर्थ बिल्कुल असम्भव है। पशु के माता पिता से अनुमति मांगना, फिर उनका अपने बच्चे को मारने की अनुमति देना। फिर मरे हुए बच्चे की वाक् प्राण आदि की शुद्धि सब ही नितान्त असम्भव है। उधर रोना इसलिए आता है कि इन ज़ड़मति लोगों ने वेद जैसी अमूल्य निधि को सारे संसार का उपहास पात्र बना डाला है। प्रथम तो संज्ञपन शब्द का मारना अर्थ सम्भव ही नहीं और यदि कदाचित् व्याकरण द्वारा यह उत्पन्न भी हो सकता हो तो सम्यक् ज्ञान देना इस प्रसिद्धार्थ को छोड़कर प्रकरण विरुद्ध असम्भव अर्थ को मन्त्रों पर क्यों लादा जाय, यह बिल्कुल समझ में नहीं आता। संज्ञपन शब्द के अर्थ का निर्णय करने में निम्न बातें विचारणीय हैं।

संज्ञपन का अर्थ मारना करने में मरे हुए पशु को यज्ञ में डालना पड़ेगा किन्तु शतपथ स्पष्ट करता है कि—

जीवमेव देवानां हविरमृतममृतानाम्

शत. ३. ८. २. ४.

देव लोग जीवित हैं मुर्दे नहीं हैं इसलिये उनकी हवि भी सजीव ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

इसलिए स्पष्ट है कि पशुयाग में जो मंत्र दिये गये हैं वे जीवित पशु के ही अंगों में प्राण संचार करने वाले हैं, न कि मुर्दे के, और यह आहुति जीवन काल में ही दी जाती है। यतः प्राण संचार से पशु के अंग और भी सजीव हो उठते हैं।

कहा जा सकता है कि पशुयाग में जो पशु अङ्ग-अङ्ग विभक्त करने का वर्णन है सो यह भी जीवित का ही होना चाहिये। क्योंकि शतपथ ने स्पष्ट कह दिया है, जीव वै देवानां हविः, जिंदा देवताओं की हवि जिंदा ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

अब प्रश्न यह होगा कि क्या यह भी सम्भव है पशु जिंदा भी रहे और उसके अङ्ग-अङ्ग विभक्त हो जावें? तो इसका उत्तर हां में है। इस गोरखधन्धे को सुल-झाने से पहले हम पशु शब्द का अर्थ खोलकर दिखलाना चाहते हैं। पशु का अर्थ है बालक। क्योंकि बालक में मनन शक्ति पीछे प्रादुर्भूत होती है, आरम्भ में उसका जीवन निसर्ग वुद्धि (Instinct) से चलता है पशु जीवन भर (Instinct) निसर्ग बुद्धि से ही दीखते हैं किंतु मनुष्य मनन शक्ति की औलाद है, उसकी मनन शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है सो वह पशु (पश्यतीति पशुः,) इस अवस्था से निकल कर मनु होता जाता है।

अथर्व वेद में मन्त्र आया है—

वितिष्ठन्ताम् मातुरस्या उपस्थात् नानारूपाः पशवो जायमाना

अथर्व का. १४. अनु. २. मन्त्र २६.

इस मन्त्र में नववधू के स्वागत में आशीर्वाद दिया गया है कि इस माता की गोद से पशु जन्म ले उन्हें प्रतिष्ठा लाभ हो।

इस मन्त्र के अनुवाद में ग्रिफिथ जैसे कट्टर पन्थी को भी पशु का अर्थ babies करना पड़ा है। यजुर्वेद में भी लिखा है—

देवा यद् यज्ञम् तन्वाना अवध्नन् पुरुषम् पशुम् ।

यजु ३१. ५१

विद्वान जो पवित्र यज्ञ करते हैं उसमें पुरुष पशु को बांधते हैं। यह तो हुई पुरुष सामान्य की बात अब जो घोड़ा, गधा आदि पशुओं के नाम आते हैं वे ब्राह्मण क्षत्रियादि गुण वाले पुरुषों के नाम हैं। देखिए—

क्षत्रं वा अन्वश्वो वैश्यं च शूद्रं चनुरासभी ब्राह्मणमजः

शत ६. ४. ४. १४

घोड़ा क्षत्रिय के अनुकूल गुण वाला है, वैश्य शूद्र गधे के और ब्राह्मण बकरे के गुण वाला।

सो जो छाग अर्थात् बकरी का बच्चा है यह गुरुकुल में प्रवेशार्थी छोटे बालक का नाम है। क्योंकि वह ऐसा नम्र तथा भोला भाला है। इसी लिए अंग्रेजी भाषा में भी Innocent as a lamb यही उपमा दी जाती है।

इस बालक को जब व्यायाम की शिक्षा दी जाती है तो उसका एक-एक अङ्ग अलग दिखने लगता है और वह जिंदा भी रहता है। इस प्रकार का बालक ही देवताओं की हवि होता है अर्थात् राष्ट्र के जिस विभाग के लिए उसे तैयार करना हो उसके लिए उपयोगी होता है। बेडौल शरीर वाला अर्थात चर्बी से लदा हुआ अथवा अस्थिपञ्जर मात्र बालक यज्ञ अर्थात संगठन के किसी काम का नहीं उसकी चर्बी पेट से कटकर व्यायाम के द्वारा जगी हुई प्राण शक्ति द्वारा जहां उसकी आवश्यकता है वहीं पहुंचनी चाहिये। यही चर्बी के हवन का भाव है। इस प्रसंग में कालिदास का यह श्लोक लीजिये।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रम् सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्
वभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन

कुमारसम्भवः १. ३१

कालिदास पार्वती के शैशव से यौवन में प्रवेश का वर्णन कर रहे हैं।

जिस प्रकार चित्रकार की तूलिका चित्र में एक एक अङ्ग को विभाग करके अलग अलग दिखा देती है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से कमल की पंखुड़ी खिल जाती है उसी प्रकार नवयौवन ने पार्वती के अङ्ग अङ्ग का विभाग करके उसे सुन्दर बना दिया। अब यहां क्या आप यह अर्थ करेंगे कि नवयौवन ने छुरी लेकर पार्वती के अङ्ग-अङ्ग काट डाले। इसी प्रकार कालिदास का एक श्लोक और लीजिये। मृगया की प्रशंसार्थ अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वे लिखते हैं कि—

"मेदश्छेद कृशोदरं लघु भवत्युत्थान योग्यं वपुः", अर्थात् मृगया से चर्बी कट जाती है और शरीर हलका और फुर्तीला बन जाता है। अब यहां क्या यह अर्थ किया जायगा कि मृगया छुरी लेकर पेट की चर्बी काट डालती है, कदापि नहीं, तो चर्बी जाती कहां है, अग्नि के अर्पण हो जाती है। किसी डाक्टर से पूछ लीजिये, वे आपको बता देंगे कि व्यायाम से चर्बी ईंधन के समान जल कर छंट जाती हैं। यही चर्बी की अग्नि में आहुति है।

जब तक शतपथ का "जीवमेव देवानां हविः" जिन्दा ही देवताओं का हवि

हो सकता है मुर्दा नहीं, यह वाक्य विद्यमान् है तब तक करोड़ों पण्डित भी इकट्ठे होकर यज्ञ में पशु हिंसा सिद्ध नहीं कर सकते ।

इसके अतिरिक्त सारे वैदिक वाङ्मय में पशुयाग वादी एक स्थान पर भी पशुं मारयन्ति अथवा प्राणै "वियोजयन्ति" ऐसा वाक्य नहीं दिखा सकते । हां इसका उल्टा तो अवश्य उपस्थित है ।

तन्नाह जहि मारयेति मानुषं हि तत् संज्ञपयान्वगन्नति तद्धि देवत्रा स यदा हान्वगन्निति एर्तहि एष देवाननु गच्छति तस्मादाहान्वगन्निति ॥शत० ३८।२।१४॥

पशु के संज्ञपन काल में जहि, मारय, यह शब्द नहीं कहे जाते क्योंकि वह मनुष्यों का व्यवहार है । उस समय शब्द बोले जाते हैं संज्ञपन, अन्वगन् क्योंकि संज्ञपन के द्वारा यह देवों का अनुगामी बन जाता है । इसीलिये कहा अन्वगन् ।

यह सचमुच बड़ी विचित्र बात है कि पशुयाग में संज्ञपन और आलम्भन शब्दों का ही व्यवहार होता है, मारण का कहीं नहीं । इसका कारण अवश्य विचारना चाहिये । बात स्पष्ट है पशुयागवादियों की यह तो हिम्मत नहीं हुई कि वे नये ग्रन्थ बना डालें । उन्होंने वैदिक साहित्य के शब्दों के ही अर्थ बदल डाले । उदाहरण के लिये हम इस लेख में संज्ञपन शब्द को लेंगे । यह संज्ञपन शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से णिच् प्रत्यय और उसके पश्चात् ल्युट् प्रत्यय करने से बना है ।

इसमें पहले सम्+ज्ञा का अर्थ देखते हैं । इसका अर्थ है भली प्रकार जानना और पहचानना, चारों वेदों में यह शब्द और किसी अर्थ में नहीं आया, इसका निम्न उदाहरण पर्याप्त होगा ।

संगच्छध्वम् संवदध्वम् संवो मनासि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्व्वे सञ्जनाना उपासते ॥
॥अ० १० । १९१।२॥

ऐ मनुष्यो ! तुम संगठित होकर चलो परस्पर संवाद (Harmony) से चलो । तुम्हारे मन परस्पर एक दूसरे को समझते हों, तुम्हारे अन्दर Perfect mutual understanding हो । जिस प्रकार तुम्हारे पूर्व विद्वान् लोग अपने-अपने कार्य-भाग की उपासना परस्पर संज्ञान पूर्वक करते आये हैं ।

मन्त्र का अर्थ इतना निर्विवाद है कि इसमें टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं । इस अर्थ में सब सहमत हैं ।

अब संज्ञपित को लीजिये । यह संज्ञा का हेतुमद्भाव का रूप है । इसका अर्थ हुआ सम्यक् ज्ञान अथवा भली प्रकार परिचय कराना । फलतः उत्तम शिक्षा देना । इसी से संज्ञपन शब्द बना ।

अब इस संज्ञपि का प्रयोग भी देखिये । मन-वाणी के झगड़े में वाणी कहती है, कि हे मन मैं तुझ से बड़ी हूँ । इसके लिये वाणी यह युक्ति देती है ।

अथह वागुवाच अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि यद्वै त्वं वेत्थ अहं तद् विज्ञपयामि अहं संज्ञपयामीति ॥

॥शत० १/५/७/१०॥

इस पर वाणी बोली, मैं ही तुझसे बड़ी हूँ। क्योंकि जो कुछ तू जानता है उसे मैं ही विज्ञापित करती हूँ। मैं समझाती हूँ। यहां सायण भाष्य (तथाकथित) में भी सम्यक् प्रतिपादयामि यही अर्थ किया गया है।

यह प्रसंग प्रथम काण्ड का है। पशुयागवादियों का प्रसंग तीसरे काण्ड में है। पता नहीं लगता कि जिस शब्द का अर्थ प्रथम कांड में सम्यक् ज्ञान देना है उसका अर्थ तीसरे काण्ड में मारना किस प्रकार हो गया।

कहा जा सकता है कि एक शब्द के दो अर्थ हैं, सो प्रकरण के बल से वहां ऐसा अर्थ कर दिया गया होगा। सो प्रथम तो इस शब्द का दूसरा अर्थ जबरदस्ती के बिना किया ही नहीं जा सकता। परन्तु यदि दुर्जनतोष न्याय से इसके दो अर्थ मान भी लिए जावें, तो अब देखना चाहिये कि प्रकरण क्या कहता है ?

पशुयागवादियों के मतानुसार

बकरी के बच्चे को जब संज्ञपन अर्थात् मारने के लिए ले जाते हैं तो उसे फांसी लगाकर मारते हैं, उस समय मन्त्र पढ़ते हैं। "ऋतस्य त्वा देव हविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि" (यजु० ८/६) अर्थात् हे देवताओं की हविः तुझे हम ज्ञान के पाश से बांधते हैं। यह गला घोटना खूब ज्ञान का पाश हुआ। अब कहिये प्रकरणानुसार सम्यक् ज्ञान देना अर्थ हुआ अथवा गला घोटना। फिर मन्त्र पढ़ते हैं—

अनुत्वा माता मन्यतामनुपितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः
यजु० ६/६॥

हम अब तुझे मारेंगे। अब तेरे माता पिता, सहोदर भाई और टोली के मित्र सब इस शुभकार्य में अनुमति दें।

भला विचारिये कि पहले तो बकरी के बच्चे का उस प्रकरण में कहीं वर्णन नहीं, फिर यदि यहां छाग मान भी लें तो यह वर्णन छाग के समान विनीत बालक का हुआ, जो ब्राह्मण गुण वाला है। भला बकरी के बच्चे के माता पिता आदि का प्रथम तो पता ही किस प्रकार लगेगा ? फिर वे अनुमति किस प्रकार देंगे ? फिर यदि उनमें अनुमति देने की शक्ति होती, तब वे तो यजमान को ही स्वर्ग पहुँचाने को कहेंगे, अपने बच्चे को नहीं।

आगे चलिये। यजमान की पत्नी मरे हुऐ बकरे के अंग स्पर्श करके मन्त्र पढ़ती है।

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रां स्तेशुन्धामि।
॥यजु० ६/१४

हे बकरी के बच्चे! मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूँ, प्राण को शुद्ध करती हूँ, चक्षु को शुद्ध करती हूँ, कान को शुद्ध करती हूँ, नाभि को शुद्ध करती हूँ, उपस्थेन्द्रिय को शुद्ध करती हूँ, गुदा को शुद्ध करती हूं, तेरे चरित्रों को शुद्ध करती हूँ। भला यह चरित्र शुद्धि तो जीवित बकरे की भी असम्भव है, मरे की तो कहना ही क्या ?

फिर अगले मन्त्र में मरे बकरे को आशीर्वाद देते हैं—

वाक् त आप्यायताम् प्राणस्त आप्यायताम् चक्षुस्त आप्यायताम् श्रोत्रंत आप्यायाताम्। अजु० ६/१६

हे मरे हुए बकरे तेरी वाणी फले फूले, तेरे प्राण फलें फूलें, तेरे चक्षु फलें फूलें, तेरे कान फलें फूलें ।

(शमहोभ्यः) तेरे दिन सुख शान्ति से बीतें । अब यदि संज्ञपन के दो अर्थ भी मान लें तो देखिये कि प्रकरण में सङ्गत अर्थ कौन सा है ।

संज्ञपन का अर्थ विद्यादान मानने से अर्थ यों हुआ, हे विनीत बालक, आज घर से गुरुकुल के लिये विदाई देते समय हम तुझे ज्ञान के पाश से बांधते हैं, माता पिता, सहोदर भाई, टोली के साथी सब तुझे प्रसन्न होकर गुरुकुल के लिये विदा करें । गुरुपत्नी कहती है—मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूँ, तेरे प्राण शुद्ध करती हूँ, तेरे नेत्र शुद्ध करती हूँ, नाभि शुद्ध करती हूँ, कान शुद्ध करती हूँ, लिंग शुद्ध करती हूँ, गुदा शुद्ध करती हूँ, अतः इन सब इन्द्रियों की शुद्धता तथा सदुपयोग सिखाकर मैं तेरा चरित्र शुद्ध करती हूं । फिर स्नातक होने के समय उसे आशीर्वाद दिया जाता है तेरी वाणी फले फूले, तेरे प्राण फले फूलें, तेरे कान फलें फूलें, तेरे नेत्र फलें फूलें, तेरे दिन सुख से बीतें ।

अब एक ऐतरेय ब्राह्मण का भी प्रमाण लीजिए—

ता भृगुरपश्यदापो वै स्पर्धन्त इति । ता एतयर्चा समज्ञपयत् ।

।। ऐतरेय ८ अध्याय २ खण्ड ।।

वसतीवरी और धना नाम की दो आपः में झगड़ा हो गया । इस झगड़े को भृगु ऋषि ने देखा सो उसने उन्हें आपस में एक मत कर दिया । यहां स्वयं सायण ने भी झख मार कर समज्ञपयत् का अथ संज्ञानम् परस्परमैकमत्यम् प्रापयत् इस प्रकार किया है । फिर पशु के सम्बन्ध में इसका अर्थ किस प्रकार बदल गया ।

इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस शब्द का अर्थ षड्यन्त्र द्वारा जान-बूझ कर बिगाड़ा गया है ।

अब यह स्पष्ट हो गया कि इस विनियोग वाद ने वेद की कैसी दुर्दशा की है । इन तीन वेद विघातक वादों अर्थात (१) विकास वाद (२) अदृष्ट वाद (३) विनियोग वाद से ऋषि दयान्द ने वेद को मुक्त करके सारे संसार के लिए मोक्ष का रास्ता खोल दिया । क्योंकि जब संसार के मोक्ष का उपाय बताने वाला वेद ही स्वयं दास बन गया था तो संसार का मोक्ष किस प्रकार हो सकता था ?

यहाँ तक हमने वेद विघातक तीन वादों का वर्णन किया । अब हम ऋषि दयानन्द की वेद भाष्य प्रणाली के आधारभूत तीन वादों का वर्णन आरम्भ करते हैं । वे तीन वाद निम्नलिखित हैं—

(१) यौगिक वाद (२) समकक्ष वाद (३) विज्ञाताश्रय वाद ।

यौगिकवाद

सब से पहले यौगिक वाद को लीजिए । वेद के शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों की अपेक्षा व्यापक है । यह सब को मानना ही पड़ता है, यदि ऐसा न मानें तो—

अश्वा भवत वाजिनः गावो भवत वाजिनीः

अथर्व १-४-४

यहां वाजि और वाजिनी शब्द का क्या अर्थ करेंगे ?

घोड़े घोड़े हो जावें और गौवें घोड़ी हो जावें ! कदापि नहीं ।

यहां सायण को भी वाज इति बलनाम यह निरुक्त प्रमाण दे कर अश्वा: बल-युक्ता भवथ: और गाव: प्रभूत क्षीरा भवथ: ऐसा अर्थ करना पड़ा । यदि अश्वादि शब्दों का रूढ़ अर्थ लेंगे तो ।

आविद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वकैरथेभियति ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः
ऋ० १–८२–१

अश्वपर्ण शब्द जो रथ का विशेषण है सो कैसे बनेगा ।

अश्वा: आंशु गामिन: पर्णा येषाम् ऐसा अर्थ करना ही पड़ेगा सो अश्व का अर्थ यहाँ शीघ्रगामी के अतिरिक्त क्या होगा ।

इसी प्रकार यदि कण्वादि नाम वेद में व्यक्ति विशेष में रूढ़ हों तो उनमें प्रत्यय नहीं लग सकता क्या दुनिया में कभी देवदत्त देवदत्ततर तथा देवदत्ततम अथवा Nepolian, Nepolianer, Nepolianest का प्रयोग भी देखने में आता है ? कभी नहीं ! किन्तु ऋग्वेद १--३१--२ में त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तम: ऐसा प्रयोग है और इस प्रकार का प्रयोग ११ स्थलों पर देखने में आता है ।

ऋग्वेद १.४८.४ में कण्वतमो नृणाम् यह प्रयोग है जिसका अर्थ मनुष्यों में मेधावितम इस प्रकार करना पड़ता है । इसी प्रकार ऋग्वेद १०।१५५।५ में अग्नि: कण्व-तम: कण्वसखा ऐसा पाठ है जिसका अर्थ बुद्धिमानों का मित्र तथा सबसे बड़ा बुद्धि-मान् ऐसा करना पड़ता है ।

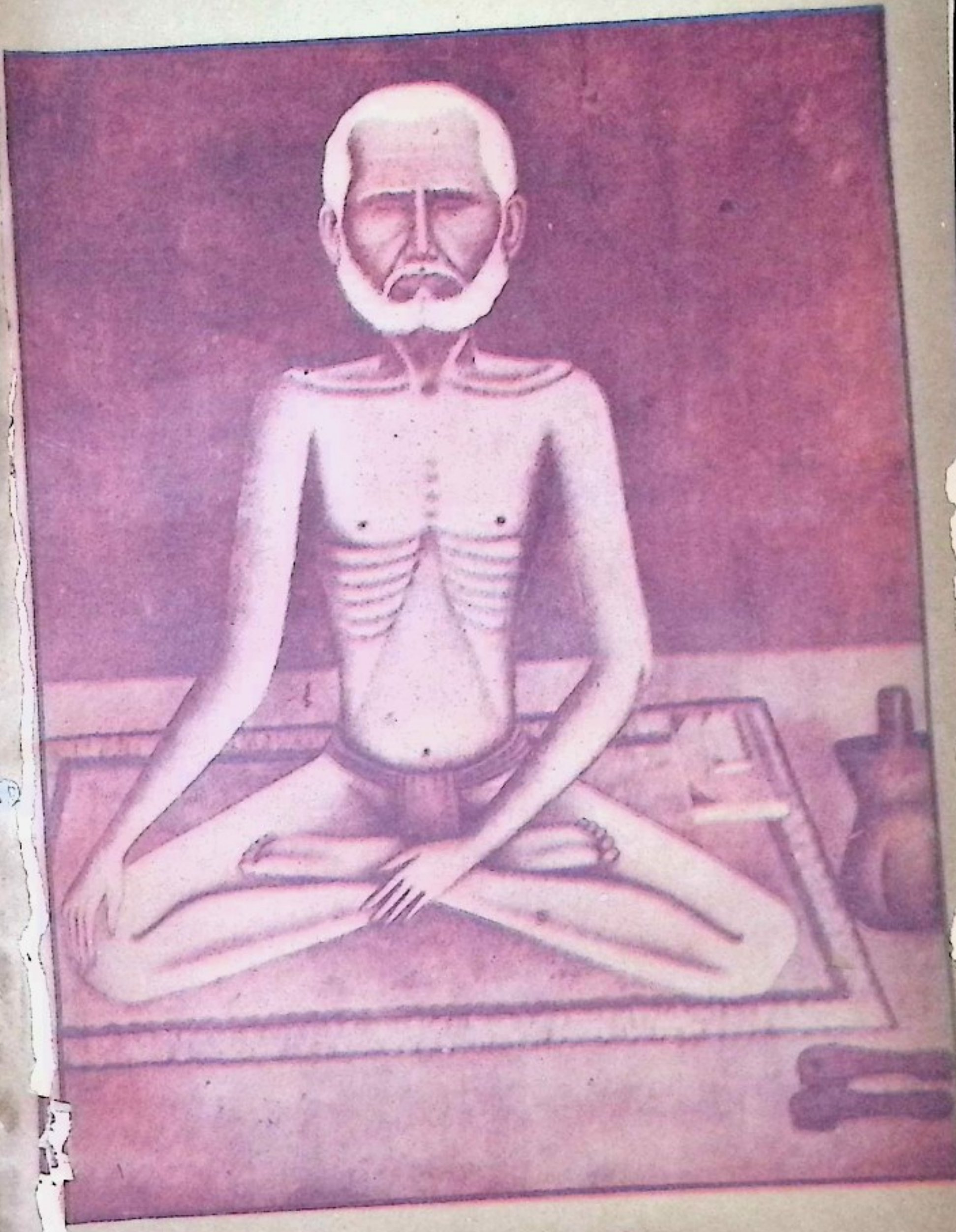
यह यौगिकवाद ऋषि दयानन्द ने चलाया हो सो ही बात नहीं, इस विषय में सायण की लीला भी देखिये ।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद् भुवि सुनं सोमं न हस्तिभिरापड्-भिर्धावतम् नरा बिभ्रता वर्चनानसम् ।

यहां सायण ने हस्तिभि: का अर्थ किया है अश्वै: सो किस प्रकार वह भी देखिये इदानीं हस्तिभि: हन्तिवद्भि इन्तेर्गति कर्मणो हस्त शब्द: गमन साधन पादवद्-भरित्यर्थ पद्भि: पादचतुष्टयोपेतैरश्वै: । अर्थात् गमन क्रिया का साधन होने से हस्त नाम पाद का हुआ इसलिये हस्ती का अर्थ पैर वाले घोड़े इस प्रकार हुआ । अच्छा ! फिर आगे पड़े हुये पड्भि: का क्या बनेगा यह सायण ही जाने । इस प्रकार सायण यदि हाथी का घोड़ा बना दे तो उस पर खैंचातानी का दोष नहीं लगता । बात तो इतनी है कि इस सूक्त का विनियोग आश्विवेदता की स्तुति में है । बलिहारी है विनियोग की ।

अब हम यौगिकवाद पर होने वाले एक आक्षेप का भी समाधान कर देना चाहते हैं । लोगों का प्रश्न है कि यदि गच्छतीति गौ: अर्थात् जो चले उसका नाम गौ । ऐसा माना जाए तो लट्टू, घड़ी, नदी, घोड़ा, खच्चर, रेल गाड़ी, मोटर, बाईसिकिल, सबका नाम गौ होना चहिये ! नहीं ? यह ठीक नहीं ! यौगिकवाद का यह तात्पर्य कदापि नहीं ।

किसी शब्द का यौगिक अर्थ जानने का प्रकार यह है कि वेद में वह कहां



श्री गुरु विरजानन्द सरस्वती।

कहां किस-किस प्रकरण में प्रयुक्त हुआ है यह देखकर ऐसा अर्थ ढूंढ़ निकालना जो उन सब अर्थों का अपने अन्दर समावेश करता हो। जैसे गौ शब्द वेद में धरती, वाणी, इन्द्रिय, स्त्री तथा गाय इन अर्थों में आया है। तो गौ का अर्थ हुआ प्रिय वस्तु को उत्पन्न करने के लिए गति करना। गाय दूध को उत्पन्न करने के लिये विचरती है, स्त्री संतान को, इन्द्रिये ज्ञान अथवा विषय सुख को, वाणी अर्थ को, धरती अन्न को। इसी प्रकार ऋ धातु को ले लीजिये यद्यपि व्याकरण में ऋ गतौ इस प्रकार अर्थ दिया है। परन्तु ऋ धातु का अर्थ जानने के लिये इसके प्रयोगों को देखना होगा। ऋ धातु से ऋतु शब्द बना है जिसका अर्थ है शीतोष्णादि अवस्था विशेष के लिए नियत काल। ऋतु का अर्थ है सत्य अर्थात् अन्यूनानतिरिक्त यथार्थ ज्ञान। जिसका उल्टा अनृत न्यून अथवा अतिरिक्त ज्ञान हुआ इससे ऋ धातु का अर्थ है परिमित। गति यह आशय वेद में स्वयम् अत्यन्त स्पष्ट कर दिया गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

तेनो अर्वन्तो हवन श्रुतो दृवविश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः।

वे हमारी आवाज सुन कर इशारे पर चलने वाले मितद्र अर्वा हमारी बात सुने यहां अर्वन्तः के अर्थ को मितद्रवः ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। वे इतने सधे हुए घोड़े हैं कि दौड़ने के समय द्रुत गति में भी नाप के साथ चलते हैं।

इन्हीं अर्थात् सधे हुऐ घोड़ों के कारण आर्यो ने अरब देश का नाम अरब रक्खा। अरबी भाषा में इस अर्व नाम का कुछ अर्थ ज्ञात नहीं, क्योंकि यह शब्द संस्कृत भाषा का है और इस देश का नाम आर्य-भाषा-भाषी लोगों ने ही रक्खा। आज भी इस के घोड़े through bried के नाम से पुकारे जाते हैं।

इसी ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना है जिसका अर्थ पाणिनि के अनुसार स्वामी अथवा वैश्य है (अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः अ. ३ पा. १ सू. १०३) इस शब्द को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने खूब धांधली मचाई है। उनका कहना है कि ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना। वैश्य का काम कृषि गोरक्षा वाणिज्य है, इसलिए ऋ धातु का अर्थ है खेती करना। इसकी पुष्टि वे अंग्रेजी भाषा के arrable land अर्थात् खेती योग्य भूमि इस शब्द से करते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है। वैश्य अर्थ इसलिए कहलाता है कि उसके साथ हर बात नाप तोल में की जाती है। आप मां के साथ मचल सकते हैं मां लड्डू खायेंगे। हो सकता है मां आप के हाथ में ताली दे दे जा जितने जी में आएं खाले। परन्तु हलवाई से आप मचल नहीं सकते। जहां आपने कहा कि आज लड्डू खायेंगे और उसने तराजू पकड़ी कि बोलो कितने तोलूं सो अर्य्य का अर्थ हुआ मित्या प्राप्तव्यः। जिसके साथ नाप तोल में ही बात की जाय, स्वामी भी अर्य्य इसीलिये कहलाता है क्योंकि वह सेवक के काम को नाप तोल कर उसके अनुसार वेतन देता है, अंग्रेजी भाषा में जो खेती के योग्य भूमि को arrable कहते हैं वह भी इसलिए कि उसे ठीक नापना पड़ता है निरुक्त में लिखा है "अर्य्यः ईश्वर पुत्रः" अर्थात् अर्य्य का अर्थ है सबसे बड़े स्वामी परमात्मा का पुत्र अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा का हर कार्य याथातथ्य पर अवलम्बित है (याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः) यजु. अ. ४० मं.८ जो उसके गुण, कर्म, स्वभाव अपने अन्दर धारण करे अर्थात् जिसका पूर्णतया नपा तुला जीवन हो वही आर्य है इस शब्द को एक जाति वाची शब्द मानकर योरोपियन लोगों ने जो बवण्डर खड़ा किया है वह आज दक्षिण देश में अपने रंग दिखा रहा है दुःख तो यह है कि पण्डित जवाहरलाल सरीखे सच्चे देश-

भक्त तथा पुरुष भी इस क्षेत्र में योरोपियन धूर्तों के चक्र में फंस कर इतने अन्धे हुए हैं कि इस भूल को नहीं सुधारते। आपने देखा कि एक शब्द के साथ किया गया अत्याचार कैसे कैसे गुल खिलाता है। सो वेद के शब्द यौगिक हैं और यौगिकवाद का अर्थ अन्धाधुन्धवाद नहीं किन्तु सर्वार्थ समावेशवाद है।

इस विषय में ऋषि दयानन्द का पक्ष सत्य की चट्टान पर खड़ा है और वह समय दूर नहीं है जब विदेशी धूर्तों के जहाज इस चट्टान से टकरा कर अवश्य चकनाचूर होंगे। हो सकता है कि मेरे धूर्त शब्द पर कई लोग आपत्ति करें किन्तु पण्डित गुरुदत्त जी आदि विद्वानों द्वारा सत्यज्ञान कराये जाने पर भी जिन्होंने राजनैतिक स्वार्थवश आर्य द्रविड़ का झगड़ा कराने के लिए आर्य जैसे पवित्र शब्द की मट्टी पलीद की उन्हें धूर्त न कहूं तो फिर क्या कहूं। परमात्मा हमारे देश के इतिहासविदाभासों का इनके चंगुल से कब उद्धार करेगा?

समकक्षवाद

अब हम यौगिकवाद के साथ ही लगे हुये एक और वाद की ओर आते हैं, यह है समकक्षवाद। उपनिषत् में कहा है—"अनन्ता वै वेदाः" स्कन्द आदि भाष्यकारों ने भी आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तीन अर्थ मन्त्रों के बताये हैं। वस्तुतः यह तीन ही क्यों, वेद के एक ही मन्त्र के अनन्त अर्थ हो सकते हैं। परन्तु इन सब अर्थों में एक व्यवस्था काम कर रही है। "सच पूछिये तो पुरुष सूक्त वेद की कुञ्जी है। इस ब्रह्माण्ड में जो सूर्य चन्द्रादि देव हैं उनकी कल्पना मनुष्य शरीर में करके फिर उनका प्रतिनिधि मानव समाज में ढूंढ़ना यही पुरुष सूक्त का सार है। भाव यह है कि इस संसार में जितने भी प्रकार के यंत्र विज्ञान द्वारा बनाये जा सकते हैं वे सब मनुष्य की किसी न किसी इन्द्रिय की सहायता के लिये ही तो हैं उन यंत्रों में प्राण, चिन्तन, मननादि शक्तियां नहीं हैं, इसलिये वे मनुष्य से कुछ कम ही काम करेंगी अधिक नहीं कर सकतीं। हां मात्रा में वे मनुष्य शक्ति को बहुगुणित कर सकती हैं सो हम जिस विद्या की भी खोज करना चाहें उसे एक पुरुष कल्पना करके पुरुष के अंग उसमें खोज द्वारा उत्पन्न कर दिये जावें। सो अग्नि सोमादि जो देवता ब्रह्माण्ड में हैं वे ही मनुष्य शरीर में हैं। उन्हीं को हमें सर्वत्र उत्पन्न कर देना है। उदाहरण के लिये मैं अग्नि तथा सोम को लेता हूँ। शतपथ में लिखा है:—

द्वयं वा इदं तृतीयमस्ति आर्द्रं चैव शुष्कञ्च यच्छुष्कं तदाग्नेयम् यदार्द्रं तत् सौम्यम्॥

॥शत० १।६।२।२३॥

फिर अगली कण्डिका में लिखा है—

सूऽर्य एवाग्नेयः चन्द्रमाः सौम्योऽहरेवाग्नेयं रात्रिः सौम्या।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड में सूर्य के उदय होने पर शुष्कता आती है, वह आग्नेय है। चन्द्रोदय पर ओस पड़ती है, आर्द्रता आती है वह सौम्य है। जहाँ शुष्कता है वहाँ अग्नि है। जहां आर्द्रता है वहाँ सोम है। बस यह ब्रह्माण्ड आर्द्र तथा शुष्क इन दो में बंटा हुआ है, तीसरा नहीं। अब रोटी में आटा आग्नेय है। जल व घृत सौम्य है। शरीर में पित्त आग्नेय है। कफ सौम्य है। इसीलिये सुश्रुत में मानव शरीर को अग्नीषोमीय कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ६ खण्ड ३ में।

नाग्नीषोमीयस्य पशोरश्नीयात् पुरुषस्य वा एषोऽश्नातियोऽग्नीषोमीस्य पशोरश्नाति ।।

इसी प्रकार चरक शरीर स्थान पञ्चाध्याय का आरम्भ इस प्रकार होता है।

पुरुषोऽयं लोक सम्मितः । तस्य पुरुषस्य पृथिवी मूर्त्तिः आपः क्लेदः तेजोऽभिसन्तापः वायुः प्राणः वियत्सुषिराणि, ब्रह्मान्तरात्मा, यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोके तथा पुरुषेऽन्तरात्मनो विभूतिः ब्रह्मणो विभूतिर्लोके प्रजापतिरन्तरात्मनो विभूतिः पुरुषे सत्त्वम् । यस्त्विन्द्रो लोके स पुरुषेऽहङ्कारः आदित्यस्त्वादानम् सोमः प्रसादः ।

इसी प्रकार सूत्र स्थान अध्याय ६ में लिखा है—

त्रिसर्गः सोम्यः आदानम् पुनराग्नेयम् ।।

इस प्रकार हमने देखा कि दिन, रात, सूर्य, चन्द्र, ग्रीष्म, वर्षा, कफ, पित्त इन सब को अग्नि तथा सोम कहा गया है । किन्तु इसमें इतना स्पष्ट है कि एक क्षेत्र में अग्नि का एक ही अर्थ होगा और उस पर यह नियम लागू होगा कि—

यदेव शुष्कम् तदाग्नेयम् यदार्द्रम् तत् सोम्यम् ।।

इस प्रकार लोक में अग्नि अग्नि है, जल सोम है, आकाश में सूर्य अग्नि है, चन्द्र सोम है, यह नहीं कि आकाश में चन्द्र का नाम अग्नि हो जाय। शरीर में पित्त अग्नि है तो कफ सोम है । हम शुष्कम् और आर्द्रम् के नियमानुसार जब किसी एक क्षेत्र में अग्नि और सोम का अर्थ पता लगा लें तो दूसरे हर क्षेत्र में उनके समकक्ष अग्नि और सोम कहलावेंगे । इसका नाम समकक्षवाद है । इस प्रकार हम यदि वेद के किसी एक क्षेत्र के अर्थ ठीक ठीक जान लें तो हर क्षेत्र में उन शब्दों का अर्थ जानना सुगम हो जायेगा । इस बात को हम मानचित्र के दृष्टान्त से भली प्रकार समझ सकते हैं । हम एक मानचित्र के छोटे बड़े अनेक मानचित्र बना सकते हैं परन्तु उनमें कलकत्ता और दिल्ली की दूरी का अनुमान सदा एक रहेगा ।

समकक्षवाद का एक सुन्दर उदाहरण शतपथ में क्रतु दक्ष शब्दों की व्याख्या में मिलता है—

क्रतुदक्षौ हैवास्य मित्रा वरुणौ एतन्न्वध्यात्मं स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव 'क्रतुरथ यदस्मै तत् समृध्यते स दक्षो मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्मकर्त्ता क्षत्रियः ।।

।। शत० ४ । १ । ५ । १ ।।

क्रतु और दक्ष का अर्थ है मित्र और वरुण । अपने अन्दर देखने पर इनका अर्थ होगा कि जो मन में सोचता है मुझे यह प्राप्त हो, उसके लिये मैं यह करूँ वह क्रतु है और जब उसका वह संकल्प फल समृद्ध होता है तब वह दक्ष कहलाता है (दक्ष समृद्धौ) [illegible] क्रतु दक्ष वरुण है । ब्राह्मण मित्र है क्षत्रिय वरुण है, क्योंकि मार्गदर्शक विधान करने वाला ब्राह्मण है जो आगे चलता है वह ब्रह्म है । उस कार्य को करने वाला क्षत्रिय है ।

इन्हीं मित्र वरुण को प्रथम काण्ड में—

"प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ"

॥ शत० १। ६। ३। १२॥

इस प्रकार आधिदैवत पक्ष में जो प्राण उदान हैं वही अधिराष्ट्र अर्थ में मित्र तथा वरुण हैं। वही अध्यात्म क्षेत्र में संकल्प तथा प्रयत्न हैं। इन तीनों क्षेत्रों में इनका नाम ऋतु दक्ष अथवा मित्र वरुण है। सो मित्र तथा वरुण एक क्षेत्र में एक ही हैं किन्तु क्षेत्र भेद से वह संकल्प तथा प्रयत्न, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, प्राण तथा उदान तीनों है। हाँ, उनमें समकक्ष भाव है एक अभिगन्ता है दूसरा कर्त्ता।

इसी प्रकार छान्दोग्य द्वितीयाध्याय दशम से इक्कीसवें खण्ड तक हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इन पाँच संगीत के अंगों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समकक्षवाद के आधार पर दिखाया गया है।

संगीत के आरम्भ में जो राग का मन ही मन में आह्वान किया जाता है, गुनगुनाया जाता है वह हिङ्कार है। राग की स्थायी प्रस्ताव है, तान। अलाप का फैलाव उद्गीथ है, धीरे-धीरेसमाप्ति की ओर मुड़ने के लिये उतार का नाम प्रतिहार है, और सुन्दर समाप्ति का नाम निधन है। यह पांच अंग मानसिक क्षेत्र में अग्नि प्रज्वालन, स्त्री सहवास, सूर्योदय, मेघ वृष्टि, ऋतुपरिवर्तन, द्यौः पृथिवी, पशुमण्डल शरीर रचना, चन्द्रोदय, अग्नि, वायु, आदित्यादि देव मण्डल इन ११ क्षेत्रों में दिखाया गया है। इन प्रकरणों से समकक्षवाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। वेद में जो अनन्त विद्या भरी है उसका यही रहस्य है। हम यदि समाजशास्त्र में अग्नि सोम इन्द्र आदि के अर्थ ठीक ठीक जान लें, तो यन्त्र विद्या में उनके समकक्ष क्या हैं, यह जानकर यन्त्र विद्या भी उन्हीं मंत्रों द्वारा मानी जा सकती है। यह बात यौगिक वाद के सहारे ही खड़ी रह सकती है। यदि हम जान लें कि अग्नि का अर्थ अग्रणी है, तब तो यह सब अर्थ ठीक समझे जा सकते हैं, परन्तु यदि हम अग्नि का रूढ़ अर्थ अङ्गारों से जलने वाली अग्नि ले लें तो फिर हम वेद का रहस्य कुछ नहीं जान सकते, यह समकक्षवाद ही है जिसके सहारे वेद समस्त विद्याओं का बीजरूप ज्ञान देने वाला कहाता है।

अब हम इस वाद माला के अन्तिम वाद विज्ञाताश्रय वाद पर आते हैं।

विज्ञाताश्रयवाद

विज्ञाताश्रय वाद यह नाम नया है, वैसे यह कोई नई बात नहीं है। किसी अज्ञात वस्तु का स्वरूप जानने के लिए हमें ज्ञात वस्तुओं का आश्रय लेना पड़ता है।

मान लीजिए कि कोई नौकर अंग्रेजी के ऑयल शब्द का अर्थ नहीं जानता। यदि कोई अंग्रेज टूटी फूटी हिन्दी जानता है किन्तु आयल शब्द की हिन्दी भूल गया है वह अपने नौकर से कहता है कि इस दीवे में बत्ती है पर ऑयल नहीं रहा। तुम इसमें बोतल में से ऑयल डाल लाओ जिससे रोशनी हो जाय। इसमें बत्ती है पर ऑयल नहीं है तो नौकर झट समझ जाता है कि ऑयल तेल को कहते हैं। वह साहब से पूछता है, साहब तेल डाल लूं। अंग्रेज झट कहता है हां तेल, तेल हम भूल गया था। तो यहाँ यह विज्ञाताश्रय वाद के सहारे उसने ऑयल शब्द का अर्थ जान लिया। उसे दीया, बत्ती, जलाना, रोशनी इन शब्दों का अर्थ ज्ञात था केवल ऑयल शब्द के अर्थ का ज्ञान नहीं था सो उसने दीया, बत्ती, जलाना, रोशनी इन विज्ञात शब्दों के आश्रय से ऑयल

इस अज्ञात शब्द का अर्थ जान लिया। इस विज्ञाताश्रय वाद के सहारे हम वेद के सब विवादास्पद शब्दों के ठीक अर्थ का निर्णय कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए वैदिक शब्द मरुत् को ले लीजिए। हमारे विचार से मरुत् का अर्थ सैनिक है। पौराणिक भाष्यकार तथा उनके पिछलग्गू योरोपियन विद्वान् इसका अर्थ पवन का देवता करते हैं। सो इस विवाद का निर्णय नृ शब्द से हो सकता है। ऋग्वेद में मरुत् देवता के ३७ सूक्त हैं, इनमें १८ स्थलों पर इनको नरः कहा गया हैं। इस शब्द ने सायण के लिए कठिनाई उत्पन्न कर दी। जिन्हें वह देवता कहता है उन्हें वेद नर कहता है। इससे बचने के लिए सायण ने उसी यौगिकवाद का आश्रय लिया जिसकी आज सर्वत्र हंसी उड़ाई जाती है। वह कहता है, नरः मेघानाम् इतस्ततो नेतार इत्यर्थः परन्तु इस विवाद का अन्तिम निर्णय मृ धातु करती है। मृ धातु का अर्थ प्राण वियोग सर्ववादि सम्मत है। इधर सायणादि सब पौराणिक भाष्यकार देवों को अमर बताते हैं, उधर वेद में चार स्थलों पर इन मरुतों को मर्याः अथवा मर्त्ताः कहा गया है। अब यहाँ तो यौगिक अर्थ भी सायण का साथ नहीं देता उधर मरुत् शब्द स्वयं इस मृ धातु से बना है (मृग्रोरुतिः उणादिः १ पाद ८४ सूत्र) इस प्रकार मृ धातु के विज्ञातार्थ के सहारे मरुत् एक प्रकार के मनुष्य हैं यह निर्णीत हुआ। फिर उनका उत्तम शस्त्र धारण करना, पंक्ति बाँध कर चलना, कन्धे पर हथियार रखना आदि सारा वर्णन एक सैनिक का चित्र खेंच कर रख देता है। इसका विशेष वर्णन विस्तार के भय से नहीं दिया जाता। फिर इनको अनेक स्थानों पर 'रुद्रस्य मर्याः' 'रुद्रस्य पुत्राः' 'रुद्रस्य सूनवः' आदि विशेषणों से लक्षित किया गया है जिससे रुद्र का अर्थ सेनापति स्पष्ट हो गया। जो यजुर्वेद रुद्राध्याय में दिए गए सेनान्ये (यजु० अ० १६ म० २६) इस विशेषण से बिल्कुल मेल खा जाता है। ऋषि दयानन्द ने रुद्र का अर्थ सेनापति किया है सो उसकी इस प्रकार बड़े प्रबल प्रमाणों से पुष्टि होती है।

इस प्रकार हमने 'मृ' धातु के सहारे मरुत् का अर्थ जाना। फिर मरुत् के सहारे रुद्र का अर्थ जाना। इस प्रकार पूर्व विज्ञातार्थ शब्दों के आश्रय से हम उत्तरोत्तर अविज्ञातार्थ शब्दों का अर्थ ठीक निश्चय कर सकते हैं, यह विज्ञाताश्रयवाद ही वेद का ठीक अर्थ निश्चय करने की वैज्ञानिक कुञ्जी है। इसको छोड़कर जो पाश्चात्य लोगों ने भाषोत्पत्ति शास्त्र (Philology) के नाम से लाल बुझक्कड़ों की-सी लीला की है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है।

मृ धातु का अर्थ वेद में तथा लौकिक संस्कृत में मरना है। इस सत्य को करोड़ भाषातत्त्वविद् किसी प्रकार भी नहीं पलट सकते। परन्तु योरोपियन भाषातत्त्वविद् तो हमें निरुक्त, निघण्टु तथा समस्त भाषा के कोषों को तिलाञ्जलि देने को कहते हैं। Vedic Age नामक पुस्तक जो विद्या भवन की ओर से प्रकाशित हुई है उसमें लिखा है—

Shiva and Vedic god Rudra have been identified. It is just likely that the name of the red god of Dravidian speakers the most important divinity in their pantheon was first rendered in Aryan speech as Rudra.
(S. K. Chatterji, Vedic Age)

इस विचित्र पुस्तक Vedic Age में एस० के० चैटर्जी श्रीमुख से कहते हैं कि वैदिक देवता शम्भु तामिल चम्पू है जिसका अर्थ है तांबा। तांबा लाल रंग का होता

है सो रुद्र देवता भी लाल रंग का होता है सो रुद्र शब्द पहले रुधिर था वह तामिल लाल रंग का देवता था। क्योंकि रुधिर अर्थात् खून का रंग लाल होता है इसलिए लाल देवता का नाम रुधिर हुआ और पीछे से वही आर्यों का रुद्र देवता हो गया। बलिहारी है इस सूझ की। शम्भू शब्द शम् और भू दो शब्दों से बना है यह हम भली प्रकार जानते हैं, फिर हम उसे तामिल चम्पू से क्यों मिलाएँ, क्योंकि ! श्री चैटर्जी ने ऐसा करने का नादिरशाही हुक्म सादिर किया है, पहले हम उसका नाम रुधिर रक्खें, फिर आर्यों के देवता रुद्र से उसे मिला दें। ऐसा हम क्यों करें ? इस प्रकार का कोई नियम अभी तक हमारी संसद् (पार्लमेण्ट) ने नहीं बनाया। बना भी दे तो फिर हमें उसके विरुद्ध घोर सत्याग्रह करना होगा। यदि इन महाशय को सर्व सम्मति से लाल बुझक्कड़ शिरोमणि की उपाधि दे दी जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा। वह विचित्र पुस्तक जो देश का लाखों रुपया बर्बाद करके श्री के० एम० मुन्शी ने प्रकाशित करवाई है, जिसकी चारों ओर धूम है हमें तो संदेह है, कि कभी चण्डूखाने में भी किसी ने ऐसा असम्बद्ध प्रलाप किया होगा। किन्तु आज इसी का नाम स्कॉलरशिप और ओरिजिनैलिटी है। फिर जब यह पुस्तक देश देशान्तरों में जावेगी तो लोग वेद के सम्बन्ध में कितने घोर अज्ञान के गढ़े में गिरेंगे। विदेशी ही क्यों हमारे देश में भी सब विश्वविद्यालयों में यह पुस्तक बड़े आदर के साथ पढ़ाई जाती है। निस्सन्देह हमें इतना कट्टरवादी नहीं होना चाहिये कि हमारी धर्म्म पुस्तक पर कोई युक्तिहीन प्रहार करे तो हम उसका उत्तर युक्तियों के सिवाय किसी अन्य प्रकार से दें। किन्तु हमें इतना आत्म विहीन भी नहीं होना चाहिये कि हमारी धर्म पुस्तक का ऐसा युक्तिहीन उपहास विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाया जाय। इसी प्रकार के कपोल कल्पित इतिहासों का परिणाम वह आर्य द्रविड़ संघर्ष है जो इस समय दक्षिण को विलोडित कर रहा है और जिसका दुष्परिणाम न जाने क्या होगा ? क्या देश के शासक चेतेंगे ? क्या आर्यसमाज के अधिकारी चेतेंगे ? क्या आर्य जनता चेतेगी ?

यह तो हुई एक राह चलती बात, परन्तु इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप करने वालों का मुख तो तब बन्द होगा जब हम वेदों का इस प्रकार युक्तिसङ्गत भाष्य प्रकाशित कर सकेंगे। इसके लिये आवश्यक है कि पहले सब वैदिक देवताओं पर विज्ञाताश्रयवाद की शैली से अनुसन्धान हो। मैं जब आर्य प्रतिनिधि सभा के अनुसन्धान विभाग का अध्यक्ष था तो मैंने यह कार्य प्रारम्भ कराया था। एक पुस्तक ऋभु देवता के सम्बन्ध में निकली भी थी, जिसे पण्डित भगवद्दत्त जी वेदालंकार ने बड़े परिश्रम से लिखा था। वे अब भी गुरुकुल में यथाशक्ति वेद की सेवा कर रहे हैं।

बीच में एक बार श्री रा० ब० बद्रीदास जी जागे थे तब कुछ हलचल हुई थी वैदिक देवता सम्बन्धी १९० के लगभग शब्दों पर १०० विद्वान् लगें तो यह कार्य हो। इतने विद्वान् तो राज्य की ओर से भी नहीं लग सकते। यह कार्य तो इस प्रकार हो सकता है कि एक निर्देशक के अधीन यह कार्य आरम्भ हो। भिन्न-भिन्न आर्य कालिजों तथा गुरुकुलों के अर्पण एक एक देवता कर दिया जाय। बहुत बड़े देवता जिनका वर्णन सहस्रों मन्त्रों में है, कुछ पूरा समय देने वाले कार्यकर्त्ताओं के अर्पण हो। मैं यह योजना यह मान कर लिख रहा हूँ कि ये सब कार्यकर्त्ता अवैतनिक हों

परन्तु इन्हें एकत्र करने के लिये भी तो कुछ व्यय होगा वह कौन करे ? किन्तु इस समय तो इस सङ्गठन के लिये जितना धन अपेक्षित है वह भी हमारे पास नहीं है। सारे आर्य जगत् के सहयोग के बिना यह कार्य असम्भव है। आर्य जनता में इस कार्य के लिये जोश भी है परन्तु अति दुस्साध्य रोग है तो आर्य समाज के वर्तमान नेताओं का है। तो क्या हम निराश हो जावें, कदापि नहीं, यदि आर्य जनता इसी प्रकार लगी रही तो आर्य नेता भी सीधे मार्ग पर आ ही जावेंगे।

निराश होने के लिए सचमुच कोई कारण नहीं। इन पिछले ३० वर्षों में हमने प्रगति की है। आज से ३० वर्ष पहले वेद के विषय में हमें जितना ज्ञान था उससे हम बहुत आगे बढ़ गए हैं। ऋषि दयानन्द के पश्चात् सबसे पहले पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ ने अपने अपूर्व सूझ के ग्रन्थ लिखे। उसके पश्चात् पं० सातवलेकर जी ने जो कार्य किया उसे याद न करना घोर कृतघ्नता होगी। उसके पश्चात् वेद को सच्चे अर्थों में लोकप्रिय बनाने का सबसे अधिक श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वैदिक विनय के लेखक आचार्य अभय देव जी को। श्री चमूपति जी तथा श्री स्वामी वेदानन्द जी को भी इस प्रसंग में भुलाया नहीं जा सकता। पं० चमूपति जी तो कभी-कभी एसी ऊंची उड़ानें लेते थे, जिन्हें याद करके आज भी दिल भर आता है। फिर भला चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार को मैं कैसे भुलाऊं। उनके भाष्य में यत्र-तत्र कुछ स्थलों से किसी को भले ही मतभेद हो, परन्तु उन्होंने चारों वेदों का एक सरल भाष्य जनता के हाथ में पहुँचा दिया है। और नाही मैं श्री क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी को भुला सकता हूँ जिन्होंने वृद्धावस्था में संस्कृत पढ़ना आरम्भ करके अथर्व वेद भाष्य द्वारा नवयुवकों के सामने एक अपूर्व आदर्श रक्खा। पं० चन्द्रमणि जी का निरुक्त भाष्य भी भुलाने योग्य वस्तु नहीं है। श्री पं० प्रियरत्न जी आर्ष (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ने भी ४० के लगभग ग्रन्थ लिखे, यह क्या कोई छोटी सेवा है। पं० धर्मदेव जी विद्या-वाचस्पति ने भी वैदिक समाज शास्त्र आदि ग्रन्थ लिखकर अच्छी सेवा की है। श्री पं० प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति ने भी वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त नामक एक विशाल ग्रन्थ लिखना आरभ किया था। श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु तथा उनके प्रिय अन्तेवासी श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक ने व्याकरण की दृष्टि से ऋषि के यजुर्वेद भाष्य में बहुत से स्थलों में समाधान करने का यत्न किया है, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। श्री आचार्य विश्वश्रवाः जी भी वेद भाष्य के कार्य में संलग्न है और ब्रह्मचारी उषर्बुध जी से भी बहुत आशाएं हैं,। अन्य भी कई नाम मुझसे छुट गए होंगे उन सबसे मेरा एक ही निवेदन है वह है 'मौलौ प्रणामाञ्जलिः।"

वेद की सेवा करने वालों की एक और श्रेणी है जिन्हों ने अपने ढंग से ऋषि दयानन्द के दुर्ग को अभेद्य बनाने में बड़ा भाग लिया है। वह क्षेत्र है ऐतिहासिक पक्ष द्वारा वेद पर आक्षेपों के समाधान का क्षेत्र। उस क्षेत्र के अग्रदूत और अपने समय के सिद्ध हस्त सेनानी आचार्य रामदेव जी को मैं कैसे भुला दूं, जिन्होंने वैदिक मैगजीन द्वारा वेद का नाद देश देशांतरों में पहुंचाया। वे संस्कृत नहीं के तुल्य जानते थे तथापि अपने विशाल और व्यापक अध्ययन तथा प्रौढ़ विचार शक्ति के द्वारा वह कभी कभी वैदिक मन्त्रों की ऐसी व्याख्या करते थे जो अच्छे-अच्छे पण्डितों को चकित कर सकती थी, जिसका उदाहरण ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् इस मन्त्र की वह व्याख्या है जो आज भी

वैदिक मैगजीन के पुराने स्तबकों में पढ़ने को मिल सकती है। इस क्षेत्र में श्री भगवद्दत्त जी बी० ए० रिसर्च स्कालर भी ऋषि दयानन्द के पक्ष को पुष्ट करने का विशाल प्रयत्न कर रहे हैं। यद्यपि उनकी बहुत सी स्थापनाओं से सहमत होना कठिन प्रतीत होता है तथापि उनका दृष्टि विन्दु ऋषि के पक्ष का यथाशक्ति समर्थन करने का है। इसलिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि तिथि क्रम के सम्वन्ध में विदेशी विद्वान् भी उनका लोहा मानने लगे हैं। यदि सन्देह है तो इस विषय में कि भारतीय इतिहास की पुरानी परम्पराओं को कहाँ तक पुष्टि मिलती है तथापि उनका प्रयत्न अभिनन्दनीय है।

आज संस्कृत पढ़ने का तथा वेद मन्त्र याद करने का तथा उनके अर्थ जानने का चाव आर्यसमाज में पहले से बहुत अधिक है तथा दिनोंदिन बढ़ रहा है। आज उन घरों की संख्या भी सहस्रों में है जिनमें संध्या, अग्निहोत्र नियम से होते हैं। वेद के परायण यज्ञ भी समाजों में प्राय: होते रहते हैं। बस यदि कोई मोह निद्रा में लीन है, तो आर्य समाज के नेता लोग, सो उनके प्रति भी हम निराश क्यों हों। आर्य जनता की सम्मिलित आवाज उन्हें भी जगा कर रहेगी। उस अखण्ड ब्रह्मचारी का तप कभी निष्फल नहीं जा सकता। दुनिया बदल रही है और बदल कर रहेगी, धरती बदलेगी, आकाश बदलेगा, प्रजा बदलेगी, राजा बदलेगा, नदी, पर्वत, समुद्र सब हमें रास्ता देंगे, यहाँ तक कि आर्यसमाज के नेता भी बदल कर ही रहेंगे। वेद का नाद संसार में गूंज कर ही रहेगा।

और यदि मेरे इस निवन्ध से आप प्रसन्न हुए हैं तो आप से यही वरदान माँगता हूँ कि एक बार महता कण्ठेन मिल कर बोलिये—

ऋषि दयानन्द की जय ! वैदिक धर्म की जय !